* श्रीमतेरामानुजायनमः *

प्रश्नोत्तर गीता संग्रहः



श्री लक्ष्मीधर - विद्यामंदिर
देवप्रयाग (... हिमालय)
व्यवस्थापक- ... जोशी

प्रकाशकः—

श्री स्वामी वेंकटाचार्यार,

बद्रीनाथ।

धन्यवाद

श्रीमान सेठ बन्सीधर जी गज्जोमल जी ने यह पुस्तक अपने व्यय से छपवा कर दी, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

—श्री स्वामी वेङ्कटाचार्यार।

पुस्तक मिलने का पता:—

श्री स्वामी वेंकटाचार्यार,
वेङ्कटेश जी का मन्दिर, मानिक चौक, मथुरा।

—०*०—

कोठी सेठ लल्लामल संगमलाल,
कटरा नील, दिल्ली।

भूमिका।

सबसे पहिले उस सर्व शक्तिमान जगदीश्वर करुणा वरुणालय भगवान श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द अप्राकृत विविध गुण विशिष्ट को कोटिशः धन्यवाद है, जिसकी कृपा समुद्र के एक विन्दु मात्र पर प्राणी मात्र का कल्याण निर्भर है। उसी कृपा समूह के आधार का अवलम्बन कर सृष्टि के आरम्भ से आज तक अनेक भगवद्भक्त गण श्री भगवान के मुखोद्गीर्ण श्री गीता रूपी उपदेशों से आप्यायित होकर आनन्द-सागर में निमग्न होरहे हैं। श्रीभगवान श्रीकृष्ण का गीता रूपी उपदेश षड्दर्शनादि शास्त्रों का निष्कर्ष है। जिस तरह समुद्र-मंथन करके अमृत निकाला गया। उसी तरह उपनिषद् आदि शास्त्र समुद्र को मथ कर गीतामृत निकाला गया। इसी से कहा है कि—

"गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।"

इस वचन का तात्पर्य यह है कि, अनेक शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है; जबकि श्री गीतामृत का पान ही जीवों के लिए पर्याप्त है। श्री गीता की सबसे बड़ी एक विलक्षणता यह भी है कि, यह ग्रन्थ सार्वभौमिक माना जाता है। इसीलिए यह अनुपमेय धर्मग्रन्थ माना गया। इसी ग्रन्थ के आधार पर मेरे बन्धु भूतपूर्व डिप्टी-कलक्टर स्वामी श्री वेङ्कटाचार्यार जी ने 'प्रश्नोत्तरी गीता संग्रह' नामक पुस्तक का सम्पादन किया। यह पुस्तक नवीन प्रणाली से लिखी गई है, जोकि हिन्दी साहित्य जगत् में एक अनूठी होगी। श्री गीता के १८ अध्यायों के १६ श्लोकों का भावार्थ इस पुस्तक में वर्णित है। इस प्रश्नोत्तरी में वैष्णव धर्म (शरणागति) की महिमा भली भांति वर्णन की गई है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सहृदय पाठकगण इसको पढ़कर विशेष आनन्द का अनुभव करेंगे और अपने इष्ट-मित्रों में भी इसका प्रचार करेंगे। किमधिकम्विज्ञेषु।

निवेदक—

वृन्दावन.
ता० १६-५-३६

आचार्य मदनमोहन गोस्वामी,
वे० दर्शनतीर्थ भागवत रत्न।

* श्रीमतेरामानुजायनमः *

प्रश्नोत्तर गीता संग्रहः

—०*०—

॥ पहिला अध्याय ३३ श्लोक ॥

येषामर्थे कांक्षित नो राज्यं भोगाः सुखानिच।
तइमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानिच॥

अ०—हे कृष्ण! मैं यहां युद्ध करने के लिए आया था। परन्तु देखने से मालूम हो रहा है कि मुझे अपने बन्धु मित्र और हिताभिलाषियों को मारना पड़ेगा। मैं जिन्हों के लिए राज्य सम्पादन करना चाहता हूँ. और जिन्हों को सुख अनुभव कराना चाहता हूं। उन सबों को मारने के बाद मुझे क्या लाभ है। (इसी अभिप्राय से गीता की भूमिका आरम्भ होती है)।

कृष्ण—अहङ्कार आर ममता छोड़कर तुम युद्ध करो। तुझे पाप नहीं लगेगा। कर्मयोग करो जिससे तुझे मोक्ष मिलेगा।

अ०—कर्मयोग से क्या लाभ है।

कृष्ण—ज्ञानी हो सकता है।

अ०—ऐसे ज्ञानी का लक्षण क्या है।

॥ दूसरा अध्याय ६९ श्लोक ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सानिशा पश्यतो मुनेः॥

अ०—आपने ज्ञानियों के लक्षण १४ श्लोकों में बतलाए हैं। अब उन्हें संग्रह करके बतलाइए।

कृष्ण--जो और प्राणियों की रात्री है उसमें इन्द्रिय निग्रह वाले योगी बहुत सावधानी से रहते हैं। (अर्थात् जागरूक रहते हैं) जिससे सब प्राणी जागरूक रहते हैं, उसमें इन्द्रिय निग्रह वाले योगी रात्री समझते हैं। (मानो जो आत्म ज्ञान सब प्राणियों को नहीं है वह आत्म ज्ञान इन्द्रिय निग्रह वाले योगियों को है। जिन शब्दादि विषयों को प्राणी लोग जानते हैं उनको योगी लोग नहीं जानते।)

॥ तीसरा अध्याय ३५ श्लोक ॥

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मा त्स्वनिष्टितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

अ०--आपका उपदेश सुनकर मैंने युद्ध करने के लिए अपने शत्रुओं को देखा है। परन्तु उसमें भीष्म पितामह आदि पूजनीयों का दर्शन करके मुझे बहुत खेद हो रहा है।

कृष्ण--तुम अपना काम ठीक से करो या न करो स्वधर्म में तो मरना भी श्रेष्ट है। परन्तु परधर्म को जितनी भी श्रद्धा से करो वह सब भयङ्कर ही है। आपका स्वधर्म का कर्म ही श्रेष्ठ है। आपको परधर्म का ज्ञान भी भयङ्कर है।

अ०—वह भी तो धर्मशास्त्र है। वह कैसे हो सकता है।

कृष्ण--मालिक के हुकुम के बिना यदि कोई नौकर भला काम करे। परन्तु मालिक को उस काम से सन्तोष नहीं होते

सकता है। क्योंकि नौकर ने अपने काम को छोड़कर दूसरे का काम किया। जो काम मालिक ने नौकर को बतलाया उस काम में कुछ गलती भी होय तो उसके करने से मालिक प्रसन्न नहीं होता है। कोई मालिक अपना स्वधर्म का फल न्यून भी होय वह तो श्रेष्ठ है। ज्ञान के द्वारा मोक्ष सम्पादन करना बहुत भयङ्कर है।

॥ चौथा अध्याय २४ श्लोक ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि र्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ॥

अ० -कर्म करने में मंत्र लोप होय उसकी क्या गति है।

कृष्ण--बृह्म ही हवी है। बृह्म ही अग्नि है। कर्ता भी बृह्म है। उस कर्म को करने के लिए साधन भी बृह्म है। जो मनुष्य ऐसे कर्म रूप में बृह्म का ध्यान करता है उसको बृह्म हीं प्राप्त होता है (जो मनुष्य इस अभिप्राय से कर्म करता है उसको दोष होने से भी दोष नहीं मिलेगा। यह बृह्म से नियुक्त किया हुआ कर्म है।)

॥ पांचवां अध्याय २९ श्लोक ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोक महेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

कृष्ण--मैंने जो बतलाया है वह आपको मालूम हुआ या नहीं और आप करोगे या नहीं।

अ०—मुझे करना ही है।

कृष्ण--श्रद्धा से करना पड़ेगा।

अ०--मैं श्रद्धा से ही करूँगा।

कृष्ण—तुम मुझे अत्यन्त मित्र समझ के करो।

अ०--आपकी मित्रता में क्या विशेषता है। मुझे क्या करना है।

कृष्ण--देवादिक भी मुझे पूजने को तैयार हैं। क्योंकि तीनों लोकों का महेश्वर मैं हूं। और यज्ञ, तप से किया आराधन को लेने वाला मैं हूँ। और सर्व भूतों का मित्र मैं हूँ। जो यह सब बातों को जानकर करता है वह सुख को प्राप्त होता है। प्रथम तो कर्म और ध्यान से अन्त:करण की शुद्धि होती है। पश्चात् ज्ञान से १४ लोकों के महेश्वर मुझको समझ सकता है।

॥ छठा अध्याय १० श्लोक ॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीर परिग्रहः॥

अ०—अब ध्यान के विषय में उपदेश करो।

कृष्ण—जो कर्म करके अपना मन स्वाधीन करता है वह पुरुष प्रत्येक समय अपने मन को भगवान में लगाना चाहता है।

अ०--कैसे बैठना चाहिए।

कृष्ण---एकान्त में बैठकर मन और देह दोनों को स्वाधीन करना यह मुख्य नियम है। आशा को छोड़ना चाहिए। (इस तरह मन ठीक करके जो ध्यान में बैठता है, वह पुरुष भगवान से अपने लिए कुछ भी नहीं मांगता।) इसका अभिप्राय भी

नहीं रखना चाहिए। मन को हर समय आत्मा में मिला के रखना चाहिए।

अ०--आपका इतना गौरव है तो सब आपको क्यों नहीं मानते हैं।

॥ सातवां अध्याय १४ श्लोक ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम मायादुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्तिते॥

कृष्ण—प्रकृति और जीवात्मा ऐक तरफ है और मैं दूसरी तरफ हूँ। जीव और ईश्वर के बीच में ऐक माया रूपी परदा है।

अ०—तब आप कैसे मालूम हो सकते हैं।

कृष्ण—माया रूपी परदे को निकालने से मालूम हो सकता हूँ।

अ०--क्या माया रूपी परदे को निकाल के नहीं देख सकते हैं। इसमें क्या कष्ट है।

कृष्ण—मेरी माया (जो माया रूपी परदा बीच में पड़ा हुआ है उसको) निकालने के लिए ब्रह्मा भी समर्थ नहीं है।

अ०—जब आपका उपदेश पूर्ण है। जिस समय आपकी माया से बाहर निकलना चाहता है तो इतना कष्ट होता है तो आपका उपदेश सुनने का क्या प्रयोजन है।

कृष्ण—मम माया दुरत्यया-इसका अर्थ आपको समझना चाहिए कि मेरी माया से निकलना आप लोगों को बहुत कठिन है।

अ०—जब आप ही उस माया को दुखमय बतलाते हैं, तब यह जीव उस माया से कैसे निकल सकते हैं।

कृष्ण—जो मेरी ही प्रपत्ति (शरणागति) करते हैं वे ही उस माया रूपी परदे से बाहर निकलते हैं।

अ०—आपकी भक्ति को करके आपके पास आने में क्या प्रयोजन है।

॥ आठवां अध्याय १६ श्लोक ॥

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

अ०—बृह्मलोक आदि सामान्य नहीं हैं। इसलिए वहां जाने से भी पुनर्जन्म है या नहीं। पुनर्जन्म रहित और शाश्वत का स्थल कितना है, आप मुझे बतलाईए।

कृष्ण—जीव बृह्मलोक में पहुंचने बाद और बृह्मा के घर में जाने के बाद भी उस लोक से वापिस आ सकते हैं। (पहिला अर्थ) जो बृह्मलोक तक गए हैं वे वापिस भी आ सकते हैं। (दूसरा अर्थ) जो मेरा प्रपत्ति (शरणागति) किया है उनका पुनर्जन्म नहीं है।

अ०—पापी लोगों को ऐसे बड़े ऊंचे पदवी में जाने की क्या शक्ति है।

कृष्ण—'मामुपेत्यतु' यानी जो मेरी शरणागति लेता है, या माम्=लक्ष्मी उपेत्यतु, वह पुरुष अपनी माता लक्ष्मी जी को पुरस्कार लेके भगवान के पास शरणागति लेता है। वह सब

दोषों से रहित हो जायगा। क्योंकि लक्ष्मी जी के द्वारा जाने से भगवान इस पुरुष को प्रेम दृष्टि से देखकर अपने पास रक्खेंगे।

अ०—तुम्हारी ऐसी भक्ति करने से और कार्य कैसे हो सकता है।

॥ नवां अध्याय २२ श्लोक ॥

अनन्याश्चिंतयतो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अ०—आपने ७ अध्याय ३३ श्लोक में जो कहा है उसके अनुसार आपकी आराधना करने से क्या फायदा है, फल है :

कृष्ण—बिना प्रयोजन के ध्यान और उपासना करो। जो मनुष्य मेरे साथ नित्य सम्बन्ध रखता है उसके योग और क्षेम को मैं प्राप्त करता हूँ। लेकिन और कोई प्रयोजन नहीं रहना चाहिए। तुम्हें नित्य भजन करने से में मोक्ष देऊंगा। (योग माने जो नहीं वह देना) (क्षेम=जो है उसका रक्षा करना।) मैं अपने भक्तों की रक्षा के लिए सदैव उद्यत रहता हूं। (जैसे मैं सुदामा के वास्ते उनके घर पर सम्पत्ति पहुंचायी उसी तरह अपने भक्तों की रक्षा में तत्पर रहता हूँ।

॥ दसवां अध्याय ४१ श्लोक ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेववा।
तत्त देवावगच्छ त्वं मम तेजोंश संभवम्॥

अ०-आपने अब जो जो कहा है वह सब समझ में आगया। परन्तु आपको किस तरह जान के भजन कर सकता हूँ।

कृष्ण—मैं आपको एक लक्षण बतलाता हूँ। जन समूह का अधिपत्य मैं हूँ। जिन जिनमें सत्व ऐश्वर्य और रूप वल है उन सबों में मैं हूँ। आपको यह समझना चाहिए कि यह सब मेरे तेज से होता है। जो जो वस्तु जिस जिस जगह में गौरव से रहता है, वह सब मेरा अंश है।

अ०—जब तक अपनी आंखों से आपकी अद्‌भुत शक्ति नहीं तेखूंगा तब तक मैं विश्वास नहीं कर सकता हूँ।

कृष्ण—तब देखो।

अ०—मैं धन्य हुआ। लेकिन मुझे इस भयङ्कर अद्‌भुताकार देख के डर लग रहा है। आप कृपा करके यह आकार कौन है बतलाइए।

॥ ग्यारहवां अध्याय ३२ श्लोक ॥

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्त।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वेयेऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषुयोधाः॥

कृष्ण—सर्वलोक नाश के निमित्त सर्व संहार शक्तिमान् काल रूपी मैं हूं।

अ०—तब आप यहां क्यों आए हैं।

कृष्ण—यहां भी संहार करने ही के लिए आया हूं।

अ०—क्या मेरे पांच भाइयों को भी संहार करेंगे।

कृष्ण—आप पांच भाइयों को छोड़कर दोनों सैन्यों के वीरों को नाश करने के लिए मैं आया हूँ।

अ०--आप मुझे युद्ध करने के लिए तो नहीं कहेंगे।

कृष्ण—क्यों ?

अ०--आप तो स्वयं ही संहार करने वाले हैं। उस काम को आप ही कर सकते हैं।

कृष्ण—मेरे सोचने से इस काम को इतनी देर की क्या आवश्यकता है। एक क्षण ही में हो सकता है। तुम नहीं करोगे तो भी वह सब नाश हो जायेंगे। आपको नियुक्त करने से यह नहीं समझना कि मेरे में ताकत नहीं है। और मैंने आपकी कीर्ति के लिए आपको नियुक्त किया है।

अ०—मेरे स्वधर्म करने में आप हमको क्या लाभ करेंगे।

॥ बारहवां अध्याय ७ श्लोक ॥

तेषामहं एमुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥

कृष्ण—मुझे यथार्थ जानने से तुम प्रकृति बन्धन से छूट जाओगे। प्रकृति से अलग करने का काम मेरा है। मेरी आराधना करने से नित्य सूरियों के साथ मेरा सुख अनुभव कर सकते हो। परमात्मा की उपासना द्वारा भगवल्लभ और आत्म लाभ दोनों संप्राप्त होगा। जैसे दूसरे अध्याय में कर्म... ो कहा और ९ अध्याय में २७ श्लोक में अर्पण करने को कहा उन दोनों कामों से मेरी आराधना बहुत सुलभ है। ऐसी आराधना करने में भी कष्ट होय तो ९ अध्याय २७ श्लोक के अनुसार सब

कामों को भगवत अर्पण करना। मैं सब में बड़ा हूँ; मेरे आश्रय करने के बाद और किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं है। ऐसा कर्मयोग करो।

अ०—ऐसा करूँगा तो आप क्या देंगे।

कृष्ण—मृत्यु रूप संसार सागर से उद्धार करूँगा।

अ०—क्या बहुत देर लगेगी।

कृष्ण—नहीं, बहुत जल्दी। जैसा ५ अध्याय १६ श्लोक में कहा है, वैसे ही इसी जन्म में।

अ०—आप ऐसा उपकार करेंगे तो क्या आपको कुछ देना पड़ेगा।

कृष्ण—मैं लक्ष्मी का पति हूँ। मैं क्या चाहता हूँ। तुमसे मैं चाहता हूं प्रीति पूर्वक मनन। उससे मैं सन्तुष्ट होकर आपकी रक्षा करूंगा। (भगवान के ऊपर प्रेम करने से क्या रक्षा कर सकते है। श्रीमद्भागवत में बृह्माजी ने यह कहा है 'त्वय्यावेशित चेतसां' और भगवत गीता में भगवान ने स्वयं ही कहा है "मय्यावेशित चेतसां" इसलिए जो भगवान के ऊपर प्रीति पूर्वक मन रखता है वह पुरुष संसार सागर को सुलभ तर सकता है। जैसे पिता जी के लिखावट के नीचे पुत्र का दस्तखत।

अ०—आप कृपा करके क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का भेद हम को बतलाइए।

॥ तेरहवां अध्याय १ व २ श्लोक ॥

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्र मित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥

कृष्ण—यह शरीर क्षेत्र है। जो इस क्षेत्र को जानता है वह क्षेत्रज्ञ है। ऐसा ज्ञानियों का मत है।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्व क्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्र ज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥

अ०—आपने यह जो कहा है शरीर क्षेत्र है और उसको जानने वाला क्षेत्रज्ञ है। उपनिषद् में ऐसा कहा है क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के अधिपति ईश्वर हैं। इसमें जीवात्मा की कोई प्रशंसा ही नहीं है।

कृष्ण—मां चापि मुझको भी अर्थात् जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है और मैं भी क्षेत्रज्ञ हूँ। यानी जीवात्मा के भीतर अन्तर्यामी रूप से मैं रहता हूँ इसी से मैं भी क्षेत्रज्ञ कहा जाता हूँ।

अ०—क्या जीवात्मा की तरह आप भी एक ही शरीर के अधिष्ठाता और ज्ञानी हैं।

कृष्ण—जीवात्मा जिस क्षेत्र में रहता है उसी क्षेत्र को जान सकता है। मैं सर्व क्षेत्र को जानता हूं।

अ०—जब जीवात्मा के साथ आप रहते हैं तो उस जगह का कष्ट और सुख भी बराबर भोग सक्ते हैं।

कृष्ण—जीवात्मा मुख्य क्षेत्रज्ञ नहीं है। मैं मुख्य क्षेत्रज्ञ हूँ। इस कारण से सब काम मेरी इच्छानुसार चलता है।

अ०—जिस समय घर में आग लगती है उस समय घर में रहने वाले दो आदमियों में एक जल कर नष्ट होता है और दूसरे का नाश नहीं होता, ये बात मेरी समझ में नहीं आती है।

कृष्ण—यदि उपरोक्त दोनों मनुष्यों की योग्यता समान होय तो अवश्य कष्ट है। परन्तु एक ज्ञानी और दूसरा अज्ञानी होय तो ज्ञानी बचता है। इसी प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ में जानने वाला ज्ञानी है।

अ०—आप तो ईश्वर हैं। यह जो प्रकृति के सम्बन्ध में पदार्थ हैं, वह आपने सृष्टि किया, या जो शरीर के अन्दर रहता है उसने सृष्टि किया।

कृष्ण—मैंने किया।

अ०—क्या आप प्रकृति के अन्दर घूमते हैं।

कृष्ण—क्षेत्रज्ञं चापि मां वह क्षेत्रज्ञ भी मैं हूँ।

अ०—क्या सुख: दु:ख दोनों हैं।

कृष्ण—वह सब प्रकृति के लिए हैं। जीवात्मा के लिए कुछ सम्बन्ध भी नहीं है, मुझे किसी जगह में रहने दो मुझे कोई दोष नहीं हैं।

अ०—बृह्म के अन्दर रहने से ही आपका गौरव है, परन्तु आप सब जीवों में कहने से क्या कुत्ता के अन्दर भी हैं।

कृष्ण—हूं। सब जीवों में भी मैं रहता हूं। (इस श्लोक में "वद्धि शब्द कहने से यह मालूम हो सकता है। तुम कुत्ता की पूजा नहीं कर सकते हो। जो यह जानता है वही ज्ञानी है।)

अ०—क्षेत्र और उस क्षेत्र को अनुभव करने के लिए क्षेत्रज्ञ हैं। जब आपको क्या काम है।

कृष्ण—-ऐसा नहीं सोचना। क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों मेरा शेष है। दोनों मेरे आधीन हैं।

अ०—क्या कुछ आपसे स्वाधीन भी है। ब्रह्मा आदि भी आपसे कम हैं।

कृष्ण—सब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ मेरे आधीन हैं। उत्तम, मध्यम और अधम यह तीनों मेरे आधीन हैं।

अ०—हे कृष्ण ! क्या यह प्रकृति बन्ध मोक्ष जाने तक साथ ही रहता है। यह प्रकृति को छोड़ के भी रह सकते हैं।

॥ चौदहवां अध्याय ५ श्लोक ॥

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः।
निवध्नंति महावाहो देहे देहिनमव्ययन् ॥

कृष्ण—प्रकृति से सत्व, रज और तमो गुण इन तीनों गुणों का जन्म है। पूर्व कर्म के अनुसार जीव इस शरीर का सम्बन्ध रखता है। शरीर और प्रकृति दोनों मिलने से बन्धन में जीवात्मा लिप्त हो जाता है।

अ०—क्या ऐसा दुःख देने को प्रकृति में बल है। हे महाबाहो ! मेरे पितामह और मेरे आचार्य कहके आप भी उस प्रकृति के बन्धन में घूमते हैं। ठीक है।

कृष्ण--तीनों गुण तीनों रस्सी हैं। उस रस्सी रूपी प्रकृति से इसका बन्धन है।

अ०—मैंने यह सब जान लिया। आपका कैसे भजन करना चाहिए।

॥ पन्द्रहवां अध्याय १६ श्लोक ॥

यो मामेव म संमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्व विद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥

कृष्ण--ब्रह्मा से पिपीलिका पर्यन्त जो जीवात्मा हैं उसको क्षर कहते हैं। और जो प्रकृति बन्धन से विमुक्त जीवात्मा हैं उसको अक्षर कहते हैं। इन दोनों से जो अलग है वह पुरुषोत्तम है। जो कोई इस प्रकार मुझको पुरुषोत्तम समझता है वही सर्व-श्रेष्ठ और सर्वज्ञ है और वही मेरा भजन करता है।

अ०—जो वेद में कहा है उस प्रकार आपको पुरुषोत्तम समझ कर भजन करने में मुझे बहुत कष्ट है। इससे और कोई छोटा उपाय बतलावें तो करूँगा।

॥ सोलहवां अध्याय २१ श्लोक ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्त स्मादेत त्रयं त्यजेत् ॥

कृष्ण--क्या सब निश्चय मालूम होगया।

अ०—आपने बहुत विस्तार रूप से बतलाया। संग्रह करके बतलाइए। यह सब गुण छोड़ना बहुत कष्ट मालूम होरहा है।

कृष्ण—काम, क्रोध लोभ इन तीनों गुणों को अवश्य छोड़ दो। क्योंकि ये तीनों आत्मा को नाश करके नरक का द्वार बनाने के लिए रहते हैं।

अ०—इस कार्य करने के लिए मुझे ज्ञान नहीं है। मैं क्या करूं।

॥ सत्रहवां अध्याय ६६ श्लोक ॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ नच तत्प्रेत्य नो इह ॥

कृष्ण—बिना ज्ञान और श्रद्धा के जो कर्म करता है, उससे प्रयोजन नहीं है। वह मनुष्य जो कुछ भी करे सो व्यर्थ है। उसके लिए यह लोक और परलोक नहीं है। सब सतकर्म श्रद्धा के साथ करना चाहिए। ज्ञान भी आचरण करना चाहिए। वही मोक्ष का हेतु है।

अ०—ऐसा श्रद्धा के साथ कार्य करने में कष्ट होय तो मैं क्या कर सकता हूँ।

॥ अठारहवां अध्याय ६६ श्लोक ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

कृष्ण—तुम्हारे प्रयत्न से तुमको कुछ साहस नहीं हो सकता है। यह बिल्कुल उचित है। सब उपायों को छोड़ कर मेरी शरण लेलो। मैं तुमको सब पापों से निवारण कर तुमको मोक्ष देऊंगा।

अ०—क्या आप मुझे ऐसा कर सकते।

कृष्ण—एक २ धर्म एक २ पाप को ही निवारण कर सकता है। मैं सब पापों को निवारण कर सकता हूँ। (आदि से अन्त तक धर्म

करने के लिए भगवान उपदेश करते हुए इस स्थान में धर्म त्याग के लिए कभी भी नहीं कहेंगे। कर्न का फल और आसक्ति आदि क्रियाओं को छोड़ना। माने बिना उपाय के विषय में उपाय बुद्धि रखना अनुचित है। यही चर्म श्लोक है। क्योंकि साक्षात् भगवान् इस श्लोक में 'अहं' शब्द के अनुसार सर्वज्ञत्व और सर्वशक्तित्ववान् होकर भक्त वात्सल्य के कारण से भगवान् अर्जुन के सारथी हुए। और सबसे उत्तम बात इसी श्लोक के पूर्व भाग में मां शब्द उपयोग करने से भगवान् का पारतन्त्र्य मालूम हो रहा है। माने अर्जुन को रथ के अन्दर बैठा के साक्षात् भगवान एक हाथ में घोड़े का लगाम और एक हाथ में चाबुक लेकर खुले केशों समेत भगवान् ने सारथी का काम किया। इस कारण से भगवान् अर्जुन को उपदेश में मां शब्द प्रयोग करना बिल्कुल ठीक है। क्योंकि गीता में जिस समय अर्जुन ने "शाधि मां त्वा प्रपन्नम्" कहा था, उस समय में अर्जुन का अज्ञान निवर्त होने के लिए भगवान् ने बहुत-सा धर्म बतलाया, परन्तु अर्जुन का अज्ञान निवारण नहीं हुआ। शाधि=आज्ञा। जिस समय अर्जुन ने स्वयं ही आज्ञा मांगी थी, उस समय भगवान् ने बहुत-सा धर्म बतलाया परन्तु अर्जुन का सन्देह निवर्त नहीं हुआ। इस कारण से भगवान् ने अज्ञानी अर्जुन को ज्ञानोपदेश करना अपना कर्तव्य समझ कर अन्तिम उपाय बतलाया। वही विशेष शरणागति है।)

अ०—हे कृष्ण! आपके अनुग्रह से मेरा मोह नष्ट होगया। मैं अपना वर्णाश्रम धर्म समझ कर आपकी आज्ञानुसार युद्ध करूंगा।

॥ ॐ शान्तिः। शान्तिः। शान्तिः॥

* इति प्रश्नोत्तर गीता संग्रह सम्पूर्णम् *

कुञ्जविहारीलाल शर्मा के प्रबन्ध से
न्यू नौरत्न प्रेस,
कूचा नेचाबन्दां, चांदनी चौक, देहली में छपा !
टेलीफोन नं० ५६६१.